5

मेरी जन्मदात्री माँ की स्मृतियाँ

जब अपने बचपन की याद करता हूँ तो माँ की याद बहुत धुँधले रूप में आती है। वह सन् 1934 में, जब मैं मात्र 10 वर्ष का था, थायसिस की बीमारी से स्वर्ग सिधार गयी थी। उन दिनों फोटो खिँचाने का इतना प्रचलन नहीं था और स्त्रियों की फोटो तो शायद ही कभी खिँच पाती थी। अतः मुझे खेद है कि माँ का कोई चित्र मेरे पास नहीं है। स्मृतिपटल पर बस उसकी धुँधली सी आकृति शेष है। उस 10 बरस की कच्ची उम्र तक माँ के द्वारा अपनी संस्कार-भूमि में जो बीज मैं ग्रहण कर सका, उनका प्रतिफलन अनेक रूपों में आज भी देखा जा सकता है। माँ असाधारण रूप से गुणवती महिला थी। हिन्दी का लिखना पढ़ना किसी शिक्षक से या कहीं बाल-शिक्षालय में जाकर सीखना मुझे याद नहीं है। माँ ने जैसे घुट्टी में ही वह मुझे सिखा दिया था। उसने मेरे पिताजी को भी हिंदी में रामायण और गीता का ज्ञान स्वयं कराया था तथा उन्हें शिक्षक रखकर अंग्रेजी पढ़ने की प्रेरणा दी थी। मुझे भी उसने रामायण के सुंदरकांड और भर्तृहरि के श्लोकों से परिचित करवाया था जिनकी चर्चा मैं पहले कर चुका हूँ। आल्हा-ऊदल की कविता भी मैं माँ के मुँह से सुनता था। तुलसीकृत रामायण के सुंदरकांड का पाठ करते समय मुझे कई शंकाएँ उस बाल्यावस्था में घेर लेती थीं। उनमें से कुछ का उल्लेख मनोरंजक होगा। काव्योक्ति और अन्य अलंकारो का तो ज्ञान मुझे उस समय था नहीं, हनुमानजी के अद्‌भुत चरित्र का सारा वर्णन मैं अक्षरशः सही समझता था। अतः जब यह अर्धाली दुहराता -

जेहि गिरि चरण देहिँ हनुमंता

सो चलि गयउ पताल तुरंता

तो मुझे बारबार लगता कि हनुमानजी भी तो पाँव के रखते ही पर्वत के साथ डूबते जा सकते थे। वे बहुत हलके ढंग से और सावधानी से ठोस पहाड़ों पर पाँव रखते होंगे, ताकि पहाड़ के डूबने पर उछल कर बच सकें। मैं स्वयं भी खेलकूद में कभी-कभी जमीन पर इस प्रकार पाँव रखता या कूदता कि यदि वह स्थान पोला हो तो मैं भी हनुमानजी की तरह उछलकर बच जाऊँ।

दूसरी शंका मुझे उस अर्धाली में होती थी जिसमें विभीषण से हनुमानजी कहते थे

प्रात लेइ जो नाम हमारा
ता दिन ताहि न मिलइ अहारा

मेरी माँ ने कमरे के एक कोने में पूजास्थल बना रक्खा था जहाँ हनुमानजी के चित्र की वह प्रातःकाल पूजा किया करती थी। मैं सोचता था कि हनुमानजी की हम लोग प्रातःकाल पूजा करते हैं, भला यह कैसे हो सकता है कि प्रातःकाल उनका नाम लेने से दिन भर भोजन ही न मिले। हनुमानजी के उस चित्र में उनका विशाल शरीर अंकित था और देखते ही मेरे मन में यह अर्धाली गूँज उठती थी-

कनक भूधराकार शरीरा
समर–भयंकर अति रणधीरा

जब विभीषण के कथन पर रावण मृत्युदंड न देकर बंदी बने हनुमानजी के अंगभंग की आज्ञा देता है तो उनका यह सोचना - **भा सहाय शारद मैं जानी** मुझे बेतुका लगता था। अपने मन में मैं, तुलसीदासजी के कथनानुसार, यही विश्वास करता था कि हनुमानजी केवल ब्रह्मास्त्र की मर्यादा की रक्षा के लिए स्वेच्छा से बंदी बने हैं। वे अजर-अमर हैं और सभी देवताओं से बड़े हैं। उन्हें कौन मार सकता है ! मृत्युदंड से बचने के लिए उन्हें शारदा की सहायता की भला क्या अपेक्षा हो सकती है ! उनके इस सोच में तो साधारण व्यक्ति की-सी दुर्बलता दिखाई देती है। ये सब मेरे बालक मन की भावनाएँ थीं जिनकी याद ही अब शेष है क्योंकि आज तो लगता है यह सब सोचनेवाला वह बालक कोई और ही था, मैं नहीं था।

मैं बचपन में बहुत खिलाड़ी था। पढ़ना-लिखना तो बस पूर्वार्जित संस्कारवश स्वयं होता जाता था। उन दिनों बच्चों के खेल थे झव्वा लड़ाना, अंटा और गुल्ली-डंडा खेलना तथा पतंग उड़ाना। उनके अलग-अलग मौसम थे। जब मैं नहा-धोकर बालकों के साथ बाहर खेलने के लिए जाने लगता तो माँ हँसकर कहती 'तेरे ऊपर से एक भूत उतारती हूँ तो दूसरा चढ़ जाता है। आलस्यभूत उतरा नहीं कि झव्वाभूत या अंटाभूत सवार हो गया।' वह खिलाड़ी बालक आज लगता है, मैं नहीं, कोई और ही था और भगवान कृष्ण की ये पंक्तियाँ कानों में गूँज उठती हैं –

देहिनोस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा
तथा देहांतर प्राप्तिर्धीरस् तत्र न मुह्यति

माँ राजस्थानी में कविता भी करती थी। मुझे उसकी काव्यशक्ति के 1-2 प्रसंग अब भी याद हैं।

मेरे न जगने पर भोर में माँ पानी के छींटे मुँह पर देती हुई मुझे जगाने को भोर में यह पद सुनाती थी जो शायद उसने बच्चों की किसी पुस्तक में पढ़ लिया था —

उठो लाल आँखों को खोलो
पानी लायी हूँ, मुँह धो लो

माँ की काव्यशक्ति के साथ माँ के चरित्र की दृढ़ता और हमारे परिवार का एक दुःखद प्रसंग भी जुड़ा है। मेरी बडी बहन गिल्ली देवी के विवाह के समय भात भरने को मेरे दोनों मामाओं के आने की माँ को प्रतीक्षा थी। मैं पहले लिख चुका हूँ कि मेरे नाना मेघराजजी के स्वर्गवास के समय मेरे दोनों मामा छोटी उम्र के बालक थे। उनमें बंशीघरजी, जो छोटे थे, उन पर माँ का विशेष स्नेह था। वय और विद्या में बड़ी होने के कारण माँ का दोनों भाई अत्यंत आदर भी करते थे। मेरी बड़ी बहन गिल्ली देवी के विवाह में माँ ने आशा लगा रक्खी थी कि दोनों भाई भात भरने अवश्य आयेंगे। आर्थिक नहीं, यह भावनात्मक अपेक्षा थी। राजस्थान में भाई द्वारा भात भरने का आयोजन विवाह के कुल आयोजनों में बहन के लिए सब से अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। फिर माँ के लिए तो अपनी संतान को ब्याहने का यह पहला अवसर था और भाइयों को पहली बार भात भरना था। दोनों भाई अपने पिता जैसा वैभव और मान तो नहीं पा सके थे परंतु बंबई में उन्होंने अपने को अच्छे रूप से स्थापित कर लिया था।

हजारों वर्षों से रूढ़, भाई द्वारा यह भात भरने की प्रथा संस्कार और भावना का अंग बन गयी है और लोकगाथाओं तथा लोकगीतों में बारबार दुहरायी जाती रही है। बहन के विवाह में बड़े मामा गजाधरजी तो आये परंतु छोटे मामा बंशीघरजी, जो माँ के विशेष प्रीतिभाजन थे, नहीं आ सके। पता नहीं, किस मनःस्थिति में उन्होंने बड़े मामा से कह दिया कि मैं तो गोद चला गया हूँ, इस लिए भात भरने की मेरी जिम्मेदारी नहीं रह गयी है। शादी गया में हो रही थी और बड़े मामा राजस्थान के नवलगढ़ नगर से आये थे। माँ ने जब छोटे मामा के न आने का कारण सुना तो वह मर्माहत हो गयी। वह अत्यंत भावनाशील महिला थी। इन वचनों ने सीधे उसके मर्म पर आघात किया। उसने यह घोषणा कर दी कि अब से छोटे मामा के घर का पानी भी मेरे परिवार में कोई नहीं पीयेगा। माँ का मामा के प्रति स्नेहपूर्ण संबंध उनके रोने-पछताने पर, बाद में कायम भी

हो गया पर माँ की भीष्म-प्रतिज्ञा का पालन मैं और मेरे भाइयों ने निरंतर किया और माँ की मृत्यु के 20-21 वर्ष बाद ही सन् 1955 में छोटे मामा की रुग्णावस्था में, मैंने माँ के इस आदेश की समाप्ति की घोषणा की। माँ की प्रतिज्ञा की घटना का उल्लेख इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि इसी प्रसंग पर माँ ने जो कविता लिखकर मुझे मामा को सुनाने को याद करा दी थी उसके दो-तीन पद जो मुझे अब भी याद हैं, मैं यहाँ लिख रहा हूँ। इस संबंध में एक विशेष बात यह जाननी है कि मेरे नाना के परिवार में एक विधवा चाची का जी प्रसन्न करने को छोटे मामा को उनके पुत्र की संज्ञा दे दी गयी थी यद्यपि वे अपने बड़े भाई के साथ नानाजी की संपत्ति के पूर्ण अधिकारी रहे थे। भातवाली घटना और माँ की भीष्म-प्रतिज्ञा के बाद छोटे मामा दु:खी और संतप्त होकर जब कुछ दिनों बाद माँ से मिलने गया आये तो मैंने माँ की बनायी हुई, रचना जो उसने मुझे कंठस्थ करा दी थी, जोर-जोर से उन्हें सुनानी प्रारंभ की। मेरी आँखों में अब भी वह चित्र ज्यों का त्यों सुरक्षित है कि मैं कविता सुना रहा हूँ और माँ के सामने बैठे बंशी मामा की आँखों से आँसुओं की बूँदें टपटप जमीन पर गिर रही हैं। कविता के एक दो बंध जो मुझे आज भी याद हैं, इस प्रकार थे —

भली करी रे बंशीलाला!
देख्यो भात खा गयो टाला
खर्चो देख बहुत घबरायो
तुरत बन्यो काका को जायो
अलख निरंजन अपने आप
ना बंशी के माँ और बाप
भावज ने रे बीरा चंद्रहार गढ़ाय
भात भरन को तो तेरो हक नायँ

दूसरा प्रसंग माँ की कविता का जो मुझे स्मरण आता है वह उसकी बीमारी से संबंधित है। उसे थायसिस की बीमारी हो गयी थी जो उन दिनों असाध्य मानी जाती थी। माँ ने एक कविता बना कर मुझे सुनायी जिसकी पंक्तियाँ तो याद नहीं हैं परंतु जिसका भावार्थ यह था कि 'बेटे! मैं तुझसे और कुछ भी नहीं माँगती हूँ, केवल मेरे लिए इतना करना कि जब मैं मर जाऊँ तो दाह-संस्कार के बाद मेरी हड्डियाँ हरिद्वार की गंगा में प्रवाहित कर देना।' मुझे याद है, यह कविता सुनकर मैं रोने लगा था। 1964 में जब मैं अकेला केवल दो-तीन मित्रों के साथ बदरीनाथ की यात्रा पर निकला था तो हरिद्वार में गंगा के किनारे माँ

की उस कविता की बारबार मुझे याद आने लगी थी और मैंने स्वयं को लक्ष्य करके एक कविता, जिसमें अपने लिए भी मैंने वैसी ही भावना व्यक्त की है, उसी समय लिख डाली थी। गुलाब ग्रंथावली के तृतीय खंड में पृष्ठ 158 पर प्रकाशित उस कविता की अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं —

जीवन की गति का विराम कभी होना है
कृति का कृतिकार को प्रणाम कभी होना है
माता! पहिचान ले, सुरम्य इन्हीं लहरों में
मेरा भी धवल एक धाम कभी होना है

सारे उर-शूल तुझे सौंप चला जाऊँगा
जीवन दुखमूल, तुझे सौंप चला जाऊँगा
मुट्ठी भर धूल छोड़ काल की अकूलता में
पत्ते और फूल तुझे सौंप चला जाऊँगा

बीमारी के अंतिम दिनों में माँ जयपुर में उस समय के प्रसिद्ध वैद्य गोपीनाथजी के इलाज में थी। माँ की प्राकृतिक चिकित्सा और उसमें भी जल-चिकित्सा पर गहरी श्रद्धा थी। लुई कुने की जलचिकित्सा की हिंदी-पुस्तक के अनुसार वह बचपन में बुखार, सर्दी, खाँसी आदि बीमारियों में मेरी चिकित्सा स्वयं किया करती थी और उसके अनुपान के नियमों का कठोरता से पालन करवाती थी। स्वयं भी टबस्नान और गर्म पानी के बफारे लेती रहती थी। गर्मी के दिनों में थायसिस की बीमारी बढ़ जाती है इसलिए गर्मी में माँ के लिए शिमला के पास धर्म् ं में रहने की व्यवस्था पक्की कर ली गयी थी। परंतु इसी बीच जब उसने सुना ।क जयपुर के निकट, नमक के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध साँभर के पास नावाँ न ्क एक गाँव में एक वैद्य जलचिकित्सा द्वारा थायसिस का इलाज करते हैं, तो उसने धर्मपुर जाने का सारा कार्यक्रम रद्द कराकर नावाँ में वैद्यजी की जलचिकित्सा आजमाने का निर्णय कर लिया और इसके लिए हम सभी नावाँ चले गये। माँ के साथ पिताजी, मेरी दादी, हम तीनों भाई और बहन, (माँ के एक तीसरा पुत्र भी हुआ था जिसके जन्म के बाद ही उसकी बीमारी पुनः बढ़ गयी थी। श्रीगोपाल नामक वह छोटा भाई जो अपने परिवार के साथ गया में ही व्यापार करता था, इन संस्मरणों के लिखे जाने के बाद पिछले महीने, 5 फरवरी 2006 को दिवंगत हो गया) एक मुनीम तथा अन्य नौकर-चाकर थे। गर्मी की छुट्टी समाप्त हो जाने पर मेरा स्कूल खुल गया था इसलिए माँ को रुग्णवस्था में छोड़कर मुझे एक मुनीम (उसका नाम गुलाबचंद था। बाद में वह

मेरी ससुराल के इस्टेट को कोर्ट ओफ वार्ड्स से छुड़ाने का पैरोकार था।) के साथ गया लौट आना पड़ा। माँ की उस बीमारी में, नावाँ के निवास की स्मृतियाँ अब भी मुझे मथ जाती हैं। जिस बगिया में हमारा डेरा था उसमें एक नीम के पेड के नीचे एक कुटिया बना दी गयी थी जिसमें ठंडक के लिए समय-समय पर पानी का छिड़काव किया जाता था। उसमें माँ अधिकांश समय लेटी रहती थी। कभी कभी उसकी अधखुली आँखों को देखकर मुझे यह पता ही नहीं चलता था कि वह सो रही है कि जाग रही है। उसे छोड़कर गया जाते समय मुझे जो पीड़ा हो रही थी उसकी याद आज भी वैसी ही तरोताज़ा बनी हुई है। मैं, दो दिनों की ट्रेन यात्रा में नावाँ ग्राम से जयपुर, आगरा होते हुए गया जाते समय सारे रास्ते रोता रहा था।

ट्रेन पर मुनीम के साथ बैठाते हुए मेरे पिताजी का यह कथन जो उन्होंने मुझे रोते देखकर कहा था 'रो मत गुलाब, तेरी माँ की तबीयत ठीक होते ही तुझे बुला लूँगा' आज भी स्मृति में शूल की तरह चुभा हुआ है। माँ की मृत्यु के 61 वर्ष बाद, 1995 में, विदाई के उस दृश्य को मैंने एक कविता में जिस तरह उतारा है, वह नीचे अंकित है। उससे सुदंर और अधिक सजीव चित्रण गद्य में देना संभव नहीं है —

माँ की याद

आज इस शाम के धुँधलके में
दिल मेरा डूबता ही जाता है
फिर-से आँखों में घूमता बचपन
प्यार फिर माँ का याद आता है

रूप-गुण में भी निराला सबसे
था जो चाँदी के हिंडोलों में पला
उसको घर भर का जो मिला था दुलार
आँक पायेगा कौन उसको भला!

पर निगाहों में माँ की तो जैसे
बनके मैं देवदूत आया था
कितनी पूजा, मनौतियों के बाद
गोद में उसने मुझे पाया था!

जोर चलता जो भाग्य पर उसका
ज्ञान दुनिया का मुझमें भर देती
इतनी आशाओं से पाला था जिसे
उससे आँखें नहीं फिरा लेती
देखकर पर बहार को ज्यों ही
बाग़ में कली मुस्कुरायी हो
आके ज्यों बेरहम हवाओं ने
डाल ही तोड़कर गिरायी हो
होश मैंने न सँभाला था अभी
उसने झट मुँह था मुझसे फेर लिया
ओट पलकों की न करती थी जिसे
साथ उसका सदा को छोड़ दिया
अपनी उस आख़िरी बीमारी में
मौत मँडरा रही थी जब सिर पर
दूर क्यों किया मुझको अपने से!
क्या ये दुनिया थी माँ से भी बढ़कर!
छोड़कर जब उसे चला था मैं
याद जब उस घड़ी की आती है
रुक न पाती है आँसुओं की झड़ी
दिल में बरछी-सी उतर जाती है
याद अब भी है वह मनहूस सुबह
अपना सामान उठाना मुझको
जाके सिरहाने बैठना उसके
कह दे शायद–'नहीं जाना मुझको'
बाग़ की कुटी, सामने का नीम
मोर आँगन में चुग रहे दाने
याद वह घर है, जहाँ चलते वक्त
मुझको आशीष दिया था माँ ने

जब वो बोली थी–'रो न, मेरे लाल!
जल्द ही तुझको फिर बुला लूँगी
फिर से आना है छुट्टियों में यहाँ
चाहकर भी न आज रोकूँगी
और फिर उठते हुए बिस्तर से
जब मुझे गोद में था खींच लिया
पाँव छूने को झुका था जब मैं
सिर मेरा आँसुओं से सींच दिया
हाय! तब मेरी हिचकियों का तार
लाख रोके भी न रुक पाया था
उसने जब काँप रहे हाथों से
मुँह उठाकर तिलक लगाया था
याद अब भी है वह सफर की रात
मैंने रो-रोके जो बितायी थी
हो भले ही न यह समझ उस वक्त
माँ से वह आख़िरी बिदाई थी
सोचता हूँ कि अब कहाँ है वह
क्या उसे याद अब भी है मेरी?
क्या किसी दूर के तारे से उतर
मेरे सिर पर कभी देती फेरी?
कैसे इतनी कठोर बन बैठी
नहीं सपने में भी मिलती है झलक!
क्या नहीं दिल की बेकली से उठी
मेरी आवाज़ पहुँचती उस तक?
बढ़ता जाता है अँधेरा पल-पल
तार सुधियों के जुड़ न पाते हैं
अक्स ज्यों टूटे हुए शीशे के
भीगी-आँखों में झिलमिलाते हैं

मेरी बचपन की भविष्यवाणी

मेरी माँ से संबंधित एक घटना और याद आती है जो मनोरंजकता के साथ-साथ परामनोविज्ञान की बानगी भी उपस्थित करती है। बचपन में मेरे संबंध में स्त्रियों में यह धारणा बन गयी थी कि मैं किसीके संबंध में जो कुछ कह दूँ वह सही हो जायगा। प्रायः संतानहीन स्त्रियाँ पुत्र की कामना से मुझसे पूछने आती रहती थीं कि उन्हें पुत्र कब होगा। मेरे बड़े मामा को उस समय तक कोई पुत्र नहीं था और उसके लिए माँ बराबर चिंतित रहती थी। छोटे मामा से तो एक प्रकार से उसने मानसिक रूप से संबंध-विच्छेद ही कर रक्खा था। माँ ने एक बार मुझसे कहा, 'गुलाब, तू सारे गाँव को बेटा बाँटता रहता है और मेरे भाई को पुत्र कब होगा यह नहीं बताता।' मैंने कहा, 'माँ! मामाजी को पुत्र तभी होगा जब तू, पिताजी, मामा, मामी और नानीजी, सभी मिलकर एक साथ जीन माता के दर्शनों को राज़स्थान चलें।' माँ ने हताश होकर कहा, 'बेटा, यह तो संभव ही नहीं है। हम लोग गया में हैं, मामा हजारों मील दूर बबई में है और तेरी मामीजी एवं नानीजी राजस्थान में नवलगढ़ में हैं। पूजा के लिए एक साथ जीन माता के यहाँ जाना तो दूर की बात है, इतने सब लोगों का एक साथ मिलना ही संभव नहीं है।' बात आयी-गयी हो गयी। उसी वर्ष न जाने कैसे हम लोगों की जीन माता के दर्शनों के लिए राजस्थान जाने की यात्रा बन गयी। जीन माता का मंदिर पहाड़ों पर है और वहाँ पहुँचने के लिए पलसाना स्टेशन पर उतरना पड़ता था। विजयादशमी के अवसर पर देवी के दर्शनों का विशेष उछाह रहता था और उसी अवसर पर हम भी वहाँ पहुँचे थे। गाड़ी पलसाना स्टेशन पर संध्या समय पहुँचती थी। यात्री वहीं रात भर तंबुओं में विश्राम करके सबेरे ऊँट और बहलियों से दर्शनों को जाते थे। देवी का स्थान वहाँ से कई कोस दूर था। सब लोग संध्या समय खाना बनाने और देवी के पूजन के लिए दूसरे दिन की व्यवस्था में लगे थे तभी मेरी बड़ी बहन ने आकर कहा, 'माँ! थोड़ी दूर पर एक तंबू के आगे एक बुढ़िया बैठी है जो नानीजी की तरह लगती है।' माँ ने झिड़कते हुए कहा, 'धत् पगली, नानीजी यहाँ कहाँ से आयेंगी!' मेरी बड़ी बहन ने मुझे चुपके से कहा, 'गुलाब, आ तुझे दिखाऊँ।' मैं उसके साथ उस तंबू के पास पहुँचा जहाँ वह बुढ़िया बैठी थी। मैंने उसके पास पहुँचते ही कहा - 'नानीजी!' वह सचमुच मेरी नानी ही थी। मुझे बढ़कर गोद में लेते हुए उसने कहा, 'अरे बेटा! बस्ती भी आयी होगी, कहाँ है वह।' मेरी नानी मेरी माँ के बसंती देवी के नाम कों बस्ती ही कहकर पुकारती थी। नानीजी को लेकर मैं माँ के पास आया। फिर पता चला कि बड़े मामा गजारधरजी भी बंबई से आये हुए हैं और वही नवलगढ़ से नानीजी एवं मामीजी को लेकर जीन माता के

दर्शनों के लिए आये थे। फिर क्या था। बात बन गयी। सुबह में हम सभी लोग, माँ, पिताजी, मामा, मामी, नानी, मैं और मेरी बहन एक साथ जीन माता के दर्शनों के लिए रवाना हो गये। मेरी मां ने 4-5 महिने पहले कही हुई, मामा को पुत्र होने की शर्त सुनायी और बोली कि गुलाब की एक बात तो पूरी हो गयी, देखें, माँ के प्रसाद से दूसरी कब सिद्ध होती है। भगवती की कृपा से दूसरे वर्ष ही मेरे मामा को पहला पुत्र हुआ जिसका नाम जगदीश है और जिसने मेरे नाना के समान बंबई में ही विशाल संपत्ति अर्जित करके उनके नाम को उजागर कर दिया है। यही नहीं, नाना के हाथ से घाटे में जो भू-संपत्ति निकल गयी थी उसको भी उसने एक बार पुनः प्राप्त करके दिखा दिया है। मामा को उसके बाद तीन और पुत्र हुए जिनके नाम लल्लू, जयंती और काशी हैं। ये चारों भाई, बंबई के जुहू क्षेत्र में अपने निजी भवनों में रहकर आनंद से व्यवसाय-रत हैं। खेद है, इस प्रकरण के लिखने के बाद तीसरे नंबर के भाई जयंती का स्वर्गवास कैंसर की बीमारी से हो गया।

मेरे मामा गजाधरजी

मेरे मामा गजाधरजी जितना अपनी बड़ी बहन अर्थात् मेरी माँ को मानते थे उतना शायद ही कोई भाई अपनी बहन को मानता होगा। जयपुर में माँ की बीमारी के समय प्रतिदिन बंबई से मौसम्मी का पार्सल मामा का भेजा हुआ, आता था। माँ की मृत्यु के बाद उन्होंने मुझे भी अपार स्नेह दिया था। अपने बड़े पुत्र जगदीश को भी बराबर कहते थे कि किसी भी महत्त्व की बात पर गुलाब की सम्मति सदा लेते रहना।

माँ से संबंधित एक और घटना का वर्णन भी यहाँ समीचीन होगा जो मेरे मामा ने मुझे कई बार सुनायी थी। प्रत्येक परिवार में और प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में इस प्रकार की कुछ घटनाएं अवश्य देखने को मिलेंगी जिनके संबंध में कोई बौद्धिक विवेचन करना संभव नहीं है। उन्हें संयोग या भगवत् प्रेरणा या अन्य कोई भी नाम दिया जा सकता है। मामा ने इस तरह की एक घटना जो मुझे सुनायी थी, इस प्रकार है—

एक बार मामा, माँ तथा परिवार के अन्य व्यक्तियों के साथ जीन माता के दर्शनों को गये थे। जैसा कि मैंने ऊपर बताया है, रात पलसाना स्टेशन की धर्मशाला या तंबू में बिताकर भोर में ही लोग देवी के दर्शन को प्रस्थान करते थे। मामा, भोर के धुँधलके में नित्य-कर्म से निवृत्त होकर लोटा-डोरी लेकर पास के कूएँ से पानी लेने गये थे। वे पानी लेने को कूएँ की जगत के किनारे पहुँचे ही थे कि उनका पाँव फिसल गया और वे कूएँ में गिरने लगे। भाग्यवश कूएँ के अंदर की ओर सारा शरीर चले जाने के बाद कूएँ की मुड़ेर उनके हाथ में आ गयी और

वे उसे पकड़कर लटक गये। एक हाथ से लोटा समेत और दूसरे हाथ से पूरी तरह पंजे के बल से कूएँ में लटके-लटके मामा ने जान लिया कि अब मृत्यु निश्चित है। राजस्थान में 300-400 फिट नीचे ही पानी का दर्शन होता है और कूएँ इतने गहरे होते हैं कि ऊपर से सिर झुकाकर देखने पर ही चक्कर आने लगता है। फिर मामा का दो-ढ़ाई मन भारी पहलवानी शरीर केवल पंजों के बल पर कूयें में कितनी देर लटका रह सकता था। इस पर कठिनाई यह कि उनके एक हाथ में लोटा भी था। वे मन-ही-मन भगवती की प्रार्थना करने लगे। तभी धर्मशाला में सोई हुई मेरी माँ ने जैसे सुना कि कोई उसे कह रहा है - 'उठ, उठ, कूएँ पर जा।' माँ घबड़ाकर उठ बैठी और किसी अज्ञात प्रेरणावश कूएँ पर जा पहुँची। वहाँ देखती है कि मामा एक हाथ से लोटा समेत पंजे से और दूसरे हाथ से पूरे पंजे के बल से जगत के पत्थर को पकड़े हुए कूएँ में लटके हुए हैं। माँ को देखते ही वे आर्त स्वर में बोल उठे 'बाई (बड़ी बहन को राजस्थान में बाई कहते हैं) यह आखिरी भेंट है। सब को मेरा रामराम कहना। तुझसे भेंट हो गयी यह भी बहुत बड़ी बात है।' परंतु माँ पर तो भगवती सवार थी। उसने मामा का हाथ पकड़कर उन्हें कूएँ के ऊपर खींच लिया। पढ़ने में यह घटना जितनी अद्‌भुत लगती है, यथार्थ में उससे भी अधिक आश्चर्यजनक थी। मेरे मामा की शारीरिक क्षमता असाधारण थी। प्रतिदिन सुबह 500 डंड-बैठक कर के वे भरी बाल्टी उठाकर 4-5 सेर दूध एक बार में पी जाते थे। उनकी सवारी के लिए एक घोड़ी थी जिस पर मीलों दौड़ लगाना उनके लिए नित्य का काम था। उनकी असाधारण शारीरिक क्षमता के कितने ही किस्से नवलगढ़ में मशहूर थे। बाद के दिनों में बंबई में अधिक रहने के कारण कसरत छूट जाने से उनकी तोंद निकल आयी थी जिसका उन्हें बहुत मलाल रहता था। मामा की आश्चर्यजनक शारीरिक क्षमता का इसीसे अनुमान लगाया जा सकता है कि एक बार सिर में चोट लगने पर नीम के पत्तों का अधिक सेवन करने के कारण उन्होंने पेट की गर्मी शांत करने के लिए महीनों तक पाव-पाव भर घी प्रतिदिन पीया था। आज तो प्रतिदिन पाव भर घी पीकर पचा लेने की बात भी अविश्वसनीय लगती है। मामा की मजबूत कलाई जब मैं बचपन में देखता था तो मुझे उस समय कपड़े के थानों पर छपी गुलाम पहलवान की कलाई से वह किसी प्रकार भी कम नहीं लगती थी। सभी बच्चों की तरह दूध पीने में मेरे आनाकानी करते ही माँ कहती - 'अरे, तू अपने मामा की हँसी करवायेगा क्या! लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे!' और यह सुनते ही, लोग मेरे कारण मामा की हँसी न उड़ायें, इस डर से मैं तुरत दूध का गिलास खाली कर देता था। तो ऐसे शक्तिशाली थे मेरे मामा जिन्हें मेरी माँ ने हाथ बढ़ाकर फूल की तरह कूएँ के बाहर खींच लिया था। इसे भगवती के चमत्कार के सिवा और क्या कहा जा सकता है !